८११.८
नर | खँ

डॉ॰ नरसिंह श्रीवास्तव

खँजड़ी बोल रही है

डॉ० नरसिंह श्रीवास्तव

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

KHANJADI BOL RAHI HAI

Collection of Poems

By

Dr N. Srivastava

1988

© डॉ० नरसिंह श्रीवास्तव

ISBN 81 - 7124 - 008 - 9

रु 30.00

विश्वविद्यालय प्रकाशन, विशालाक्षी भवन, चौक, वाराणसी द्वारा
प्रकाशित तथा शिव प्रेस द्वारा मुद्रित

समर्पण

महासिद्ध सन्त, क्रान्तिकारी विचारक

एवं

युगान्तकारी कवि

कबीरदास को

खँजड़ी के कुछ बोल

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसजर्ननीकृतस्वार्थो ।
व्यऽक्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः ।।

जिस काव्य विशेष मे वाच्य अर्थ अपने स्व अर्थात् स्वरूप को एवं वाचक शब्द अपने वाच्य अर्थ को अप्रधान बनाकर उस (प्रतीयमान) अर्थ को व्यक्त (व्यञ्जना द्वारा प्रकाशित) करते है उस विशिष्ट काव्य को काव्य-तत्वार्थदर्शी सूरियो ने ध्वनि कहा है ।

आनन्दवर्धन—ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत–१३

यदप्युक्त भक्तिर्ध्वनिरिति, तत्प्रतिसमाधीयते–
भक्त्याबिभर्ति नैकत्वं रूप भेदादयं ध्वनिः ।

(यह पूर्वोक्त-लक्षण ध्वनि भक्ति अर्थात् लक्षण के साथ ऐक्य नही पाता क्योकि यह भिन्न रूप वाला है)

जिस काव्य मे वाच्य अर्थ एवं वाचक शब्द वाच्य से भिन्न अर्थ का प्रयोजन रूप से द्योतन करते है वह (प्रयोजन रूप व्यङ्ग्य अर्थ की प्रधानता वाला) काव्य ध्वनि कहलाता है । और भक्ति तो मुख्यार्थ से इतर अर्थ का प्रतिपादन मात्र है ।

ध्वन्यालोक, प्रथम उद्योत–१४

समर्पकत्व कावस्य यत्त सर्व रसानप्रति ।
स प्रसादो गुणो ज्ञेयः सर्व साधारणक्रियः ।।

काव्य की सब रसो के प्रति जो सम्यक व्यञ्जकता है वही सब (रस एवं रचना) मे समान रूप व्यापार वाला प्रसाद गुण समझा जाता है । काव्य मे शब्द की और अर्थ की जो स्वच्छता-अर्थात् झटिति व्ङ्ग्यार्थोपस्थापकता होती है उसी को प्रसाद गुण कहते है । और वही सभी रसों का समान रूप से (व्यञ्जक) गुण है । उसी प्रकार सर्वविधि रचनाओं मे शब्दगत अथवा अर्थगत मे, समस्त अथवा असमस्त मे—समान रूप से (व्यंजक होकर) विद्यमान प्रधान रूप से (रसादि रूप) व्यङ्ग्य अर्थ की अपेक्षा से ही व्यवस्थित माना जाना चाहिये ।

ध्वन्यालोक, द्वितीय उद्योत–१०

"साहित्य की 'महानता' का निर्णय केवल साहित्यिक प्रतिमानो से नही हो सकता, यद्यपि हमे याद रखना चाहिये कि वह साहित्य है अथवा नही, इसका निर्णय केवल साहित्यिक प्रतिमानो से हो सकता है।"

T. S. Eliot, "Religion and Literature" in
Selected Essays, (London, 1951), p. 388

आधुनिक हिन्दी कविता मे क्या यह अपेक्षित एव सम्भव नही कि 'साहित्यिक' एव 'साहित्येतर' प्रतिमानो का ऐसा सामञ्जस्य हो सके कि दोनो तथ्य अथवा तत्व न रहकर अर्थ बन जाय ? क्या यह आधुनिक रचनाधर्मिता के लिए अपेक्षित एव श्रेयस्कर नही है कि 'साहित्यिक' एवं 'साहित्येतर' तत्वो का ऐसा समन्वय हो कि वाणी एव अर्थ को, श्रद्धा एव विश्वास (Feeling and Faith) को, शक्ति एव भक्ति को, लक्षण एव ध्वनि को अलग-अलग देखा ही न जा सके ? क्या आधुनिक उपमान एवं पारम्परिक भाषा युगबोध एव शाश्वतता, शब्द एव भाव परम्परा एवं समकालीनता आदि विरोधी तत्वो का व्यङ्ग्य-अर्थ की अपेक्षा से व्यवस्थित एवं प्रसाद गुण से अनुप्राणित करना ही नई कविता की सर्वश्रेष्ठ उपलब्धि नही होगी ? यह आवश्यक कदापि नही कि प्रत्येक कविता मे रसनिष्पत्ति हो ही, किन्तु भावशबलता अथवा रसाभास तो होना ही चाहिये ? एक छोटे कवि के रूप मे मेरी यही सर्वश्रेष्ठ समस्या है और उपर्युक्त समन्वय (Equilibrium) की खोज ही मेरी साधना है। मै कितना सफल हो सका हूँ, यह वे सम्यक दृष्टि वाले विद्वान समालोचक एवं रसग्राही उदार पाठक ही बता सकते है जो न केवल विशुद्धतावादी होगे, न अस्तित्ववादी, न प्रगतिवादी, न आधुनिकतावादी, न तो कवितावादी न अकवितावादी ही होगे। मेरा प्रयास उन्ही काव्य-प्रेमियो को समर्पित है।

नरसिंह श्रीवास्तव
आचार्य एव अध्यक्ष
अग्रेजी विभाग
गोरखपुर विश्वविद्यालय

चैत्र, नवरात्रि, २०४५

अनुक्रम

खँजड़ी बोल रही है

१

खँजड़ी बोल रही है

खॅजड़ी बोल रही है
झक झक धाम धाम
झक धाम धाम,
बोलो राम राम।
गा रहा है दूर कोई
अधोमुखी उलझी
मौन जटाओ वाले
युगद्रष्टा बूढे बरगद के नीचे
आमी तट पर--
यह मुर्दो का गॉव,
सन्तो छोड़ चलो यह ठॉव।

खँजड़ी बोल रही है--
तुम मुर्दा हो, वे मुर्दा है
सब मुर्दे है,
मै मुर्दे का चाम,
छोड़ चलो यह ग्राम।
खँजड़ी बोल रही है—
बरस रहा है कम्बल
पानी भीज रहा है
रीझ रही है सारी दुनिया,
सारा देश पसीज रहा है

अधमरी आत्मा खीज रही है।
भीग रही है भरी तिजोरी,
कुर्सी भीग रही है
भीग रहा है नाम
बोलो राम राम।

खँजड़ी बोल रही है—
अँधा अँधे ठेलिया
भाग रहे है घोडे बिना लगाम।
मुर्दा मुर्दे को धक्का देकर
बढ जाता है आगे,
मुर्दा मुर्दे की खीच रहा है कुर्सी
मुर्दा गिरा धड़ाम।
मुर्दा मुर्दो का कफन बटोर कर बेच रहा है,
मुर्दा मुर्दे की छाती पर चढकर
ऐंठ रहा है मूँछ
और कही मुर्दे मुर्दो को ठेल रहे है
मुर्दे पापड़ बेल रहे है।

खॅजड़ी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है—
जीत रहा हैं रावण
हार रहे है राम।
हाटो मे बिक रहे है आदमी
ऊँचे नीचे दाम
चोखा चमड़ा चोखा दाम
धन की धुरी पर झुकी हुई
पृथ्वी अब भी डोल रही है
खॅजडो बोल रही है,
धिकताम चाम

धिकताम दाम
धिकताम काम
धिकताम धिकताम ।

खॅजडी बोल रही है
श्वसुर दहेज धन तौल रहा है,
बहूयज्ञ की तैयारी मे व्यस्त
धन की प्यासी सास
अमृत मे विष घोल रही है ।
खॅजड़ी बोल रही है—
बैल बियाय गाई भई बाझ
बछरा दूहे तीनो साझ ।
बोल रहा है मूर्ख मसीहा बनकर—
हम सब खडे बजार मे लिये लुकाठा हाथ,
जो घर फूंके और का चले हमारे साथ ।
गाधी की प्रतिमा पर उल्लू सवार है
उल्लू पर लक्ष्मी है विराजमान
कैदी की भॉति ।
धूपदीप ले खड़े हुए है मुर्दे
शायद उल्लू बैठ जाय मेरे ही सिर पर ।
शोरशराबा भीड़भाड़ है, भगदड़ है
स्वार्थ का ठेलमठेला,
भगदड़ मे किसने किसकी इज्जत उतार ली
किस मुर्दे ने सब मुर्दो की जेबे काटी
सब मुर्दो की आज तलाशी होगी
इसी बात पर अड़े हुए है ।
झूठा नोन चबेना झूठा फिर भी
"सत्यमेव जयते" की गुहार है ।
मोटे मुर्दे छोटे मुर्दो का
चूस रहे है खून,
मारे जाते है मच्छर ।

शहर नही यह धन के धनी
मन के कंगालो का
उजड़ा पजड़ा है ठाँव,
डोल रही है जिन्दा लाशें,
यह मुर्दो का ठाँव।
सन्तो, छोड चलो यह गाँव।

खँजड़ी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है—
क्रिया कपालक्रिया बेटे ने
बरसा रही खोपडी चाँदी के सिक्के
सोने की मोहरे खर खर खर
सूखी हड्डी के टुकडे—गूँज उठा
टूटी खोपड़ी का अन्तिम स्वर—
गङ्गा मे मत फेकना पुत्र
अस्थियाँ गाड़ देना आँगन मे मेरी
तुलसी चौरे के पास।
बरसी के दिन खोदना
निकलेगे सिक्के ही सिक्के—
सोने की मोहरे, चाँदी के सिक्के
बेटा कर कपालक्रिया ध्यान से
मेरा 'सिल्वर कॉर्ड' टूटने न पाये,
दूसरे वर्ष स्विज बैक मे रख देना
हड्डियाँ और सिक्के—
या किसी बैक मे
इटली हो या फ्रास,
स्वर्ग मे स्वस्थ रहूँगा,
धरती से भी जुड़ा रहूँगा।

खँजडी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है।
एक अचम्भा देख रे भाई,
ठाढा सिह् चरावै गाई।
नेता खाता ओट मलाई
इसलिये भूख से डरा हुआ है
भोली गायो को हॉक रहा है।
गाये खाती घास इसलिए
सब स्वच्छन्द विचर रही है
सारा खेत चर रही है।
जान गये है जाननहारा
पेट पेट का पढे पहाडा।
नावो मे नदियॉ डूब रही है,
खॅजड़ी बोल रही है।
साधो देख ले देखन हारा,
इस घट अन्दर सोने के ईटे,
हिरोआइन और मारजुआना
परख देख ले परखन हारा।

खँजड़ी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है
जातिवाद की नई पिटारी रंग विरंगी
जिसमे मुर्गी अण्डे देती है,
कभी कभी सोने के अण्डे
और कभी चॉदी की कुर्सी
अण्डा फोड निकलती है।
अनकथनो कथनी कर कहना
शायद खॅजडी की गल्ती है,
फिर भी खॅजडी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है।
हम गढते है शब्द
नये नये गहनों की भॉति

लाशो की शोभा के लिए
या बटोरते है शब्द निरर्थक
जैसे बच्चे जोड रहे हो देश विदेश के
नये पुराने सिक्के या डाक टिकट।
हम गढते है शब्द नये
केवल मन बहलाव के लिए
या अपने बचाव के लिए।
योगक्षेम ही महामत्र है
सुरक्षित वर्तमान को
सुनहरे भूत से जोडते है
सुखमय भविष्य के लिये
किन्तु शब्द बन जाता है
समूह का सरगना
और हम गढते जाते है शब्द
आत्मघात के लिए।
गूँगे का गुण गूँगा ही जानता है
कोई शब्द को नही पहचानता है।
हम शब्द ही ढोते रह जाते है,
एटलस बनकर अर्थ उठाने की
न क्षमता है न हौसला।
वाराह भगवान की दुहाई
देते है प्रतिक्षण
किन्तु अधडूबी पृथ्वी को ऊपर उठाने की
न शक्ति है न प्रेरणा।
बढती जाती है मुर्दो की जनसंख्या
बसते जाते है मुर्दो के गॉव।

खँजडी बोल रही है
सारा पोल खोल रही है।
मानव का इतिहास विजय का नही
शायद पराजय का है,

बाहर का विजेता
भीतर कही अपने से हारा है,
बार बार।
बाह्य-विजय गर्व को
भीतरी कमजोरियो ने धिक्कारा है
बार बार
फिर भी विजय की भूख के बमगोले
गिरते रहते है किले की दीवारो पर
और भीतर उठती रहती है कराहे
असमर्थता की, लाचारी की।
अणुबम रक्खे जाते है तहखानो मे,
नपुसक आस्थाएँ हिजड़ो सी
नाचती है आगन मे।
अधमरी आशाओ की भुतही
छायाएँ डोल रही है,
खँजड़ी बोल रही है।
समूचा इतिहास परिस्थितियो की जीत
आदमी की हार—
पर्वत पर पत्थर चढाने लुढकाने का
सिसिफसी प्रयास
चलता रहता है
आदमी दुहराता रहता है
शब्दो का आडम्बर,
कोरे वादे, वाग्जाल।

घर के तिलचट्टो ने चाट लिया
खँजडी का पुराना चमड़ा,
खजडी फूट गई
किन्तु उसकी अन्तिम गूँज से
उभरा एक भव्य आकार
कबीर चौरे के पास

शुभ्र श्वेत दाढी युक्त शात मुख—
ऊँची टोपी दिव्य
व्यंगभरी दीप्तिमय टेढी मुस्कान ।
ओठ हिले रक्तहीन— शब्द बने :
खजडी थी बहुत पहले फूट गई,
यह तो उधार की थी
बेकार सी थी
बीमार भी थी ।
खँजडी जब से है फूट गई
सोचने की आजादी के साथ साथ
सोचने की आदत भी छूट गई ।
तब से तुम्हे जो मिला स्वीकार किया
या आधे मन से इन्कार किया ।
वास्तव मे हम सब स्वीकृति और इन्कार के
बीच मे सदियो से खड़े है
त्रिशंकु से जडता के बिन्दु पर अड़े है,
सोचते हुए कि परिस्थितियाँ बदलेंगी
तो आदमी बदलेगा ही ।
हाय अफसोस खँजडी फिर नही बोली
और यह रहस्य नही खुला
कि केवल परिस्थिति बदलने से
आदमी नही बदलता—
व्यक्ति ही जड़ है सारी समस्याओ की
और व्यक्ति ही है समाधान ।
आदमी ही सर्वोपरि है
आदमी से कोई नही ऊपर है
ईश्वर भी ऊपर नही
आदमी के भीतर है ।
आदमी का बदलना आवश्यक है
परिस्थिति मे बदलाव के लिए ।
आदमी बदलता है खँजड़ी के बोल से,
स्वतन्त्र विचार से, शब्द अनमोल से

जो दिमाग की टूटी नसो को जोड दे,
शिराओ मे सडे हुए मवाद को सुखाकर
नया खून भर दे ।
मुर्दो को जीवित कर दें ।

फूटी खँजडी सिसकती रही
श्वेत दाढी हिलती रही
और वह दिव्य महासिद्ध बोलता रहा—
आदमी के सुन्न पैरो के नीचे एक बार
बारूद रखनी ही होगी
जिससे दलदल मे फँसे पाव ऊपर उठें,
खुली हवा खुली धूप में
उसकी आत्मा मुक्त विचरण करे ।
युद्ध आवश्यक है,
यथार्थ से विचारो का युद्ध
नितान्त आवश्यक है
युद्ध
रूढियो आडम्बरो के विरुद्ध
जिससे आदमी प्रकाश को
अलग कर सके अधकार से
और अंधकार को देख सके प्रकाश में,
सचमुच स्वतन्त्र हो सके ।
सारे सकलित शब्दो का
वेदो का, उपनिषदो का
खँजड़ी की गूँज का
यही एक अर्थ है,
शेष सब व्यर्थ है—
केवल इतिहास की अर्थहीन करवट
या कोरा स्वप्न दर्शन ।

२

आईने में अन्तरात्मा

वर्षो से सुनता आया था
अपनी अन्तरात्मा मे झाँककर
देखने का तीखा उपदेश
किन्तु हर उपदेश का तमाचा पड़ने पर
मै सोचता रहा क्या यह सम्भव नही
कि मेरी अन्तरात्मा ही मुझे देखे
घूर घूर कर।

अन्तरात्मा प्रकट करने की मेरी साधना
वर्षो चलती रही और अचानक एक दिन
ड्रेसिग टेबुल के आदमकद शीशे मे
एक मानवी आकार
बिल्कुल मेरा ही प्रतिरूप
किन्तु हड्डियो का एक ढाँचा
शुभ्र श्वेत परिधान मे प्रकट हुआ,
चेहरे पर काले काले धब्बो वाली
अर्धनारीश्वर, मेरी अन्तरात्मा
बोली, ओ मेरे माँसल शरीर
तुम्हारी उपलब्धि कितनी हुई,
कितना ऊपर उठे, कितना नीचे गिरे
अब भी क्या हर चीज को
अपने मन की सम्पत्ति समझते हो,

उन्हें इच्छाओ की जिह्वा से चाटते हो,
प्यासी आखो से छूते हो, सूँघते हो
जानते हो मेरे चेहरे के ये दाग
आयुजनित धब्बे नही,
तुम्हारे ही आत्मघाती चुम्बनो की छाया है—
तुम्हारे ही स्वार्थ की सकुचित परछाइयाँ।

मै अवाक भयभीत कुछ सहम कर बोला—
क्या मेरा तेरा इतना निकट का रिश्ता है,
तुम्हारे शरीर पर अकित है सब कुछ
जो मेरे मन बुद्धि अहकार पर बीता है
बोली मेरी अन्तरात्मा—
ओ मेरे अहकार, मै
मात्र आवश्यकता और स्वाधीनता का—
बन्धन ओर मुक्ति का द्वन्द नही,
मै साँप की केचुली नही
तुम्हारे अस्तित्व-बोध से गिरी हुई।
तुम्हारी चेतनता का बीज हूँ
साधना का फल ओर
वासना का आदि मूल हूँ
तुम्हारे ही शीशे पर उभरा हुआ।
न पुण्य हूँ न पाप हूं,
तुम्हारी मा हूं, बाप हूं।
केवल कपाल क्रिया से मरूँगी नही,
जब तक अपने अहकार का पिण्ड बनाकर
दान नही दोगे
मै मरूँगी नही,
जब तक तुम रहोगे
तुम से कभी मिलूँगी नही,
किन्तु भेद की रस्सी से
तुमसे जुडी ही रहूँगी।

तुम्हे चाँटे नही मारती
जैसा तुम समझते हो, सोचते हो,
केवल सचेत करती हूँ, मै
सदा तुम्हारे पास ही रहती हूँ।
तुम्हारे भयाक्रान्त हृदय की धडकने सुनती हूँ
जब तुम अपना माँस नोचे जाने के भय से
अग्नि खोजने से कतराते हो,
या पर्वत की चोटी पर चढने के भय से
पानी बिना प्यासे ही मरते हो।
शब्दो के सीकचो से बने
पिजडे मे बन्द
केवल पख फडफड़ाते हो,
उड नही पाते कभी
अर्थो के ऊँचे आकाश मे
तुम मुझे पहचान नही पाते हो—
तुम्हारी खोई हुई शान्ति हूँ
जिसका तुम केवल दम भरते हो,
तुम्हारा एकान्त हूँ
जिससे तुम डरते हो।

डरते हुए मैने कहा—
मुझे सीमित बना कर माँ,
क्यो बनाना चाहती हो
असीम की पहचान या परिभाषा
ओ मेरी अन्तरात्मा—
मै नदी की तरह कैसे बहूँ
केवल बहने के लिये
स्वच्छन्द वायु सा मुक्त छन्द की
रचना कैसे करूँ
केवल गीत बनने के लिए
पर्वत सा एक पैर पर कैसे खड़ा रहूँ

केवल होने के लिए ?
कैसे रोक दूँ इस निरन्तर
घूमते हुए पहिये की धुरी
जिस पर मै खडा हूँ
जब प्रतिक्षण कुछ बनना ही
मेरी नियति है
और चाक के साथ घूमना मेरी जिंदगी,
कुछ बनने की सतत प्रक्रिया मे
मात्र होने की आशा ही असम्भव है।
जब तक जिजीविषा ही अस्मिता है
और मै अस्मिता के बन्धन से बँधा हूं
गतिशीलता से मै कैसे लडूँ
जब गति मे जन्मा हूँ
पनपा हूँ बढा हूँ
स्वय कैसे चलूँ, अँधा हूँ।

तुम्हे पहचानने की बडी कोशिश की
किन्तु अभी तक पहचान न सका
शायद स्वयं को भी जान न सका।
मैंने बडी साधनाएँ की
अब भी करता हूँ—
भीतर का सब कुछ उलीच कर
कर देता हूँ बाहर,
या बाहर का सब समेट कर
भर लेता हूँ भीतर
अथवा भीतर बाहर का भेद मिटाकर
मौन प्रतीक्षारत रहता हूँ
फिर भी पहचान नही बन पाती
मेरी और तेरी।

ओ मेरी अन्तरात्मा
पूजा की बेला आने के पहले ही
कोई तुक्षक पी जाता है कटोरे का दूध
और छछूँदर छू जाती है पूजा के अक्षत दूब।
ज्यो ही आगे बढता हूँ पहचान बताने
या तुम्हे जानने
एक हिमालय आ जाता है मेरे तेरे बीच।
सब कुछ अर्पित कर देता हूँ फिर भी
पहचान नही बन पाती
मेरी या तेरी।

अमृत के साथ निकलता रहता है विष भी
पर जल का सागर हो तो उसे मथा जाए,
यदि विष ही विष फैला हो पानी बनकर
कौन मथेगा इस जीवन को
दानव, मानव या देव ?
मेरे भीतर तो तीनो ही सघर्षशील है
सब सागरमन्थन मे क्रियाशील हैं
फिर भी पहचान नही बन पाती
मेरी और तेरी।

शीशे मे आदमकद खड़ी मेरी आत्मा
बोली मुझको सम्बोधित कर,
ओ मेरे आवरण।
क्यो खड़ी कर दी है यह ऊँची दीवार
मेरे और अपने बीच।
मेरी दृष्टि मे दूरिया नही है
न बीच मे कोई व्यवधान।
पर्वत भी पारदर्शी हो जाता है
जब मै देखती हूँ आर पार।

तुम्हारे आगन मे भरा कचरा,
कूडा करकट सब देखती हूँ।
तुम्हारे सपनो की सडन
और विचारो की दुर्गन्ध भी सूँघती हूँ।
सब कुछ देखती हूँ,
सुनती हूँ
तुम्हारे जनवादी ढिढोरे की आड मे
धनवादी धर्म का प्रचार।
देखती रहती हूँ
तुम्हारी अवसरवादिता के उडते गुब्बारे,
अलिन्द मे भरे हुए चालाक चूहो की बीट,
कमरो मे मकडियो के जाले—
उलझे विचार,
स्वच्छन्द घूमते हुए स्वार्थी तिलचट्टे
कतार की कतार।
दमित वासनाओ का मलवा
अपूरित इच्छाओ की लाशे—
सड़े हुए सस्कार
सब देखती हूँ।
तुम्हारा घर है या उल्लुओ का डेरा,
अँधी अहता का रैन बसेरा।
छत पर मडरा रहा है मृत्यु का बाज
और तुम उडा रहे हो लगडी जिन्दगी की पतग
जिसकी डोर पहले से कटी है,
तुम ढीली कर रहे हो केवल डोर की कल्पना
जिसे दे रहे हो मृत मन्सूबो की उड़ान।

मै सब कुछ देखती हूँ
सब जगह रहती हूँ, मेरे विकार।
मै वही थी जब युधिष्ठिर को
दुर्योधन ने जूए मे छला था।

मै वही थी जब द्रौपदी को भरी सभा मे
किया जा रहा था निर्वसन ।
मै वही थी जब सप्त महारथियो ने
छल से वीर बालक का किया था हनन ।
मै वही थी जब हिरोशिमा पर
अणुबम गिरा था ।
मै अब भी देखती हूँ
रगभेदी अत्याचार,
गरीबो का शोषण,
भ्रष्टाचार बलात्कार
किन्तु कुछ कर नही सकती ।
उत्पीडन की पीडा हूँ,
हर जीत की खुशी हूँ
मानवीय हार की पीडा हूँ ।
मै वही रहती हूँ जब तुम
किसी बेबस का पेट काटते हो
या मालिक के तलुए चाटते हो
कुत्ते की भाँति
अथवा बिजली और आयकर की चोरी करते हो
या जब लोग एक दूसरे की काटते है जेब
भरे बाजार मे
या शब्दो के विषैले चाकू से
किसी की पीठ मे करते है घात ।

कुछ सहमा कुछ सकुचा हुआ बोला मै
मेरी तो नियति ही लगती है अधोगामी
मेरे जीवन मे पवन प्राणो की
इच्छा ही बनकर बोल रहा है सतत्
माटी का मन डोल रहा है क्षण प्रतिक्षण
घूम रहा है प्रत्यावर्तन का चाक निरन्तर

धधक रही है आग
खून की बूंद बूंद मे,
पानी का प्रवाह अधोमुख भीतर बाहर
खोज रहा है नीचे बहने की राह।
मेरा शून्य नही रह पाता कभी शून्य
उसमे नीचे बहने का
भीतर जलने का
बाहर प्रस्फुटित होने का
गूंजता रहता है अनवरत
एक मिश्रित मन्द स्वर।
मै कैसे तेरी बात सुनूँ
किस सीढी से ऊपर चढूं
कैसे आगे बढूं–अंधा हूं।

बोली मेरी अन्तरात्मा—
कर्म तुम्हारी विवशता है
किन्तु वही मेरी स्वतन्त्रता है।
मै करती हूँ साथ साथ देखती हूं,
भोगती हूं बिना कुछ किये हुए,
और करती हूं बिना भोगे ही
तुम केवल करते हो देखते नही,
करते हो भोगने के लिये
अथवा कुछ पाने के लिए।
तुम कर्म के बन्धन हो,
मै स्वतन्त्रता की चेतना हूं।
आवश्यकता है मजबूरी को
स्वतन्त्रता मे बदलने की
देखना और करना साथ साथ होने की।
देखने करने और भोगने का अन्तर्विरोध
तुम्हारे जीवन का गतिरोध
तब तब चलता रहेगा

जब तक तुम्हारी गति और
मेरी दृष्टि होगे नही एकाकार।
तब जब भी देखोगे भीतर
आईने मे तुम्हारी जगह मै हूँगी–
तुम्हारी अन्तरात्मा, तुम्हारी माँ
और मै जब भी झाकूँगी आईने के बाहर
सब कुछ तुम्हारा ही विस्तार होगा
भीतर बाहर।
एक साथ जब भी हम देखेगे, चलेगे
धूल के कण बाँसुरी के स्वर भरेगे
द्वैत के बादल पिघल कर
अद्वैत की वर्षा करेगे।

●

३

अजगर के पेट में

आँधी सा प्रबल एक झोका
मुझे पीछे से धकेलता हुआ
आगे ही आगे ठेलता गया
और बेबस मै गिरता पड़ता, लुढकता
कभी धरती को कसकर पकड़ता
कभी उसके ऊपर उडता हुआ
किसी अदृश्य चुम्बक की ओर खिचता गया।
जहाँ रुका, एक भयंकर दानवी
अजगर का मुँह था खुला हुआ।
दो विकराल नीली आँखे थी घूर रही,
मुझे दे रहा था कोई बिजली के 'शॉक',
पोर पोर पर भयंकर पीड़ा थी
भय था, भयाक्रान्त मै बदहोश था।
सोचने की शक्ति मेरी क्षीण किन्तु अक्षुण्ण थी।
यह जानते हुए
कि यथार्थ मुझे ग्रसना चाहता था
उससे आँख मिलाना
उससे दो-चार होना
सबसे बड़ी यातना थी
जहरीला संत्रास था,
भयंकर पीड़ा थी, जब
एक विशाल जिह्वा लपलपाती हुई

बढती आ रही थी मेरी ओर मुझे
एक गुफा से उठाकर कण्ठ मे उतार लेने के लिए।
मेरा कॉपता हुआ मस्तिष्क
घूम रहा था तीव्र गति से
एक गतिशील इंजन की भॉति।
मै सोचने लगा—

क्या यह वही सर्प है जो
नीद लगते ही मेरे सपनो की वाटिका मे
रोज घुस आता रहा चुपके से
उर्वशी, रम्भा या मेनका बनकर
और अपनी लिजलिजी कुण्डलियो मे
मुझे बॉध लेता था कसकर
मधुर किन्तु विषैले परिरम्भ मे।
मै सोचता रहा—
शायद यह वही सर्प था
जिसने मेरे आदिम पुरखों को छला था,
उन्हे नीचे गिरने को प्रेरित किया था।
या यह वही सर्प है
जो भगवान विष्णु की सुख-शैय्या है
या यह जो महाशिव का आभूषण है
अथवा मेरी ही कुण्डलिनी
जो अभी तक चढ न सकी ऊपर
ऊर्ध्वरेता बन न सकी भीतर,
बाहर विस्तृत होकर विकराल
मुझे ही ग्रसने को है उद्यत।

अजगर की जिह्वा मे भूचाल सा झटका हुआ,
मै उसके कण्ठ के भीतर था।
असह्य पीड़ा थी, जोड़ो मे दर्द था

जैसे किसी ने पर्वत की चोटी से
मुझे नीचे था पटक दिया।
असह्य पीडा थी पोर पोर मे
जो बढती ही जा रही क्षण प्रति क्षण
जीने की दुश्चिन्ता के साथ।
अस्तित्व का खरा बोध एक पीडा है अवश्य
किन्तु अस्तित्व का भय पीडा की सीमा है।
और भय मे चिंतन
कटे पर नमक,
पहली बार मुझे आभास हुआ
भय मे सोचना कितना भयंकर है
जब सोचना मजबूरी हो,
जरूरी हो।

वर्षो मै अजगर की घुमावदार
सडको सी आँतो मे घूमता रहा,
अपनी पहचान का कोई चेहरा ढूँढता रहा,
जो मिले भी उन्होने मात्र 'हेलो' से टरका दिया
या मेरी आत्मीयता के उत्सुक हाथ छूते ही
किसी पढी हुई पुस्तक सा
मुझे दूर सरका दिया।
हताश, अँधेरी गुफा मे दिशाभ्रमित
सर के बल सरकता हुआ मै
एक चौराहे पर अटक गया
जहाँ कई नसों का संगम था,
अन्य जगहो से रोशनी अधिक थी,
अँधेरा कुछ कम था,
शायद वह अजगर की रहस्यमय
मणि का प्रकाश था फैला हुआ,
सबको थी जिसकी तलाश।
मुझे भी उसी की तलाश थी

किन्तु भ्रम था मै कहा हूँ
इतना अवश्य होश था
कि मै अजगर की आँत मे बदहोश था।

सच है
सोचने की प्रक्रिया और
निर्णय की आजादी ही
जिजीविषा का सत्व है
व्यक्तित्व का सर्वस्व है
किन्तु अजगर के पेट मे
इसका भी ह्रास था,
अजगर के भोजन का
यही प्रथम ग्रास था।
भीड़ मे व्यक्तित्वहीन जर्द चेहरो की
उलझी नसो का तनाव देखकर
मेरी नसो को भी लकवा सा मार गया।
उसकी आँतो का विषैला रस-स्राव
मेरे भी व्यक्तित्व को था गला रहा,
पिघलती हुई अपनी आत्मा को देखकर भी
मै लाचार था
किन्तु उसकी रक्षा मे सजग अड़ा रहा
अजगर के पेट मे जहाँ भी रहा
अनवरत खड़ा रहा।
ऐसा विषैला रासायनिक स्राव था,
निमिष मात्र मे आत्मा जीवात्मा बनी
और बेचारी जीवात्मा कुछ ही क्षणो मे
मन बुद्धि अहंकार खोते हुए,
रूप रस गंध की परिभाषा भूलते हुए
मात्र स्पर्श होकर रह गई,
केवल शरीर थी बन गई
और पूरे शरीर मे भयंकर पीड़ा थी

जोड़ो मे दर्द था
पेट मे चूहे थे लोट रहे,
हड्डियॉ थी अकड रही
सर था चकरा रहा,
फिर भी मै सोचता रहा।

शायद निरर्थक था सोचना इसलिए
या पीडा से मुक्ति पाने के लिये
मैने विष्णु की वन्दना की,
अदृश्य से आवाज हुई—
मै क्या करूँ,
नियति बनाऊँ या नियति के लडूँ।
मै तो स्वयं महासर्प के सहस्र फणो के नीचे
उसी के शरीर पर पड़ा हूँ,
अन्तर इतना है कि
तुम सर्प के भीतर हो,
मै बाहर हूँ।
सर्प ही मेरा बिछौना है,
सर्प तो मेरी कल्पना है
किन्तु जब तक तुम हो
मै निष्क्रिय हूँ, सोया हूँ।
निराश मैने पुष्प विल्वपत्र लेकर
महाशिव का किया आह्वान—
आशुतोष मुझे मुक्त करो
या बता दो मुक्ति का साधन।
वाणी आकाश से प्रस्फुटित हुई—
अजगर का सारा विष
शरीर के किसी कोने मे रख लो,
सर्प को ग्रीवा मे हार सा धारण करो,
नटराज बनना हो तो पहले नट बनो।
अजगर के पेट मे रहो या बाहर

सर्प का मित्र सा वरण करो।
किन्तु मै ही जानता था
जिजीविषा की पीड़ा मे
कितना कठिन था यह आचरण।

फिर ग्राहग्रसित गज की पूरी तन्मयता
और आर्तता से
मैने अपने पुराने मित्र कृष्ण को पुकारा
वे आये, किन्तु अदृश्य रहे
प्यार से मुझे फटकारा--
युद्ध करो
युद्ध से मत डरो
तुम अजगर के भीतर नही,
वह तुम्हारे भीतर है
भीतर लड़ो
युद्ध को युद्ध नही
कर्तव्य समझ कर युद्ध करो
अनासक्त, असम्पृक्त।
फिर नाग को नाथो,
उसके फण पर नाचो,
विष से मत डरो
अमृत के लिये युद्ध करो।
किन्तु मेरी वेदना से यह साधना
कही अधिक कठोर थी।
मै कराहता हुआ आगे बढा—
भीतर बड़ा शोर था,
आपाधापी भाग दौड का जोर था,
जो मिले मित्र
जो लड़े शत्रु—
सब अधूरे थे।
कुछ लूले, कुछ लँगड़े थे संस्कारभ्रष्ट

कुछ विचारो के कुबड़े थे,
कितनी की आँखो मे कैन्सर था स्वार्थ का
जिनपर काला चश्मा चढा था,
अजगर की आँतो से नि.सृत
विष का विषम प्रभाव था—
किसी का पेट था भयानक बढा हुआ,
किसी का एक पैर था सडा हुआ।
कोई 'एडस' का शिकार था,
कोई भ्रष्टाचार मे ग्रस्त था,
कोई क्षय से बीमार था।
फिर भी सब भग्नदेह, जीर्ण-मन
अधमरी आत्मा के लिए नाच रहे थे 'डिस्को'
''पॉप'' या ''जाज़'' की धुन पर।
सबको सर्प की आँतो मे छिपी हुई
रहस्यमय मणि की तलाश थी—
विश्वास अधूरा था,
आशा थी मजबूरी
फिर भी जिजीविषा पूरी थी।
मुझे भी मणि की ही तलाश थी,
किन्तु सोचने की प्यास थी,
कण्ठ था सूख रहा,
पानी कही एक बूँद भी नही था
पानी गिरने की आवाज तक नही थी कही।
मै सोचता रहा बाहर शायद जल हो
किन्तु अजगर के बाहर भी कुछ है
इसी की शंका थी,
जल का अभाव भी भ्रम था शायद,
पेट के बाहर निकलना ही तपस्या थी।

सोचता रहा—
क्या अजगर ब्रह्माण्ड है,

अजगर ही पिण्ड है ?
मुक्ति गति का ठहराव है
या ठहराव की गति है ?
क्या अजगर आसक्ति है
या अजगर ही भक्ति है,
या अजगर एक बहुत बड़ा गिरगिट है
जो बदलता है रंग प्रतिक्षण
मेरी ही इच्छा पर ?
अजगर ही तुम हो,
तुम ही अजगर हो, शायद
किसी ने कान मे धीरे से कहा—
अजगर को समझना ही मुक्ति है।
अजगर, जो दानव है
उसका पेट चीर दो,
बहा दो खून उसका,
अजगर फिर जी उठेगा,
अजगर तब नया होगा,
तुम्हारा आदि सत्व होगा,
फिर अजगर के पेट की सारी पीड़ा
मात्र एक सपना रहेगी।

किन्तु मै कुछ कर नही सकता,
यह निर्णय भी नही कि
अजगर मेरे भीतर है
या मै अजगर के पेट मे पडा हूँ।
इतना प्रत्यक्ष है कि
उसका पेट चीरने से पहले
यह समझ लेना होगा
जिसने मुझे ग्रसा है,
जिसका मै ग्रास हूँ

मेरी ही सृष्टि है,
अपने को दिया गया अपना ही शाप है।
शायद मै ही अजगर हूँ या
महाकाल के घर मे हूँ,
मायानगर मे हूँ।
महानगर मे हूँ ?

•

४

अदृश्य आदमी

जिसके अदृश्य होने की रपट
हर थाने मे आई है
वह गुमशुदा आदमी इसका बड़ा भाई है
जो दृश्य है।
इसके पास सब कुछ है
हाथ पैर, स्वस्थ देह,
सुन्दर नयन नाक कान
वन-मानुष से बहुत भिन्न।
यह चलता है फिरता है,
मशीन सा करता है काम
किन्तु तुम उसे यन्त्र-मानव नही कह सकते
क्योंकि उसमे ऊर्जा नही, प्राण है,
निजत्व है, इयत्ता है,
अस्मिता का आभास है
शायद आत्मा भी हो उसके भीतर,
तुम उसे रॉबाट कतई नही कह सकते।
आदमी अदृश्य है अवश्य
किन्तु यह भी आदमी सा लगता है।
जैसे बन्दर की पूँछ गिर गई थी अकस्मात्
सहस्रो वर्ष पूर्व पहली बार
और वह बन गया था आदमी का चचा,
ठीक उसी तरह आज फिर

आदमी का है कुछ खो गया,
और वह बन्दर का भतीजा है हो गया,
यह भी सच है कि मानव अदृश्य हो गया।

यह जो बचा है दृश्य मानव,
इसका चमडा पारदर्शी है—
उसके भीतर भली भाँति देख सकते हो
दुश्चिन्ता के बुखार में
काँपती हुई हड्डियाँ
तड़फड़ाती मांसपेशियाँ
नीली नसो मे दौडता विषाक्त खून।
उसे आणविक युद्ध की चिन्ता कम
अपने बैंक बैलेंस की अधिक है।
भीड़ मे चलता हुआ नितान्त अकेला है,
अकेला चलना उसे अच्छा लगता है
'एकला चोलो रे' का सही अर्थ
समझता है।
उसके लिये ट्रक से कुचले हुए आदमी की मृत्यु
दुर्घटना नही मात्र एक घटना है
जिससे पुलिस को निपटना है।
लोग सहस्रो की सख्या मे मरते है
रोज सड़को पर लड़ाइयो मे
आतकवादियो की गोलियो से।
उसे क्या करना है,
केवल जिन्दा रहना है।

रपट आई है तो क्या हुआ,
पुलिस क्यो खोजती है अदृश्य को
दृश्य की चारदीवारियो मे—
दृश्य तो उसका घर है

जिसका वह स्वामी था
किन्तु अजीब विडम्बना है
आज गृह ही गृह स्वामो पर हावी है।
तिरस्कृत भयभीत गृह स्वामी
शायद किसी तहखाने मे छिपा है
या है छिपा दिया गया।
घर अपने सतरंगी सपने देखता है
इन्द्रधनुषी मन्सूबे गढता है,
गृहस्वामी के अरमानो को
अपने जूतो के नीचे कुचल कर
मूछे ऐठते हुए चलता है,
महत्वाकाक्षा की सीढ़ियो पर चढ़कर
शहर की दीवार फाद जाता है
दूसरे शहर मे ऊधम मचाने।
गृहस्वामी तमसाच्छन तहखाने मे
गिनता रहता है मुक्ति के तारे
या गढता रहता है पराजय के बिम्ब।
शहर क्या करे बेचारा
जब उसके सारे गृहस्वामी अदृश्य हो
या तहखानो मे छिपे हो
और घर के ईट पत्थर-अस्थिपंजर
शहर के शासक बन बैठे हो।

दृश्य की भी अपनी वेदना है—
उसे याद है कि
उसके अदृश्य मे एक झरना था
जो कलकल करता हुआ अमृत झरता था,
समुद्र को खोजना उसका संकल्प था
और उसकी गहराइयो को छूना
उसका गन्तव्य था
किन्तु अदृश्य से लापता होते ही

वह झरना भी गुप्त हो गया,
समुद्र खोजने की
चेतना भी हो गई लुप्त,
जो बचा है सब स्वामित्व की भूख है
शक्ति की तृष्णा है
प्रतिष्ठा की प्यास है।

अब शेष है मात्र आत्मकेन्द्रित चतुराई
जिसने उसे पशुता से ऊपर उठाया था
किन्तु वही आज हो गई है आत्मघाती।
दृश्य को केवल मीठे पानी की तलाश है
समुद्र तो खारा है
उसका मंथन भी आवश्यक है
जल पीने के पहले।
स्वयं को उबालना पडेगा
समुद्र मे घुसने के पहले।
समुद्रमन्थन उसका अग्रज
अदृश्य जानता था—
काश ! किन्तु काश क्यो,
उसे तो ऊपर का मीठा जल पीना है—
दृश्य को दृश्य मे ही जीना है।

अब भी अधूरे लोग गलियो बाजारो मे
बाते करते है उस गुमशुदा आदमी की
याद करते है उसकी सच्चाई, भोलेपन की।
लोग अब भी पूछते है
आखिर वह कहाँ गया,
कहाँ अदृश्य हो गया वह आदमी
जो शब्दो का सही अर्थ जानता था
और जीता था अर्थो की संवेदना,

शब्दों को मन्त्र बना देती थी
जिसकी साधना
वह कहॉ गया ?
अनर्थ की दुनियॉ मे जो जी रहे है
अर्थहीन जिन्दगी वे
कभी कभी पूछते है—
कहॉ गया वह रहस्यो का पुजारी,
आस्था का प्रेरक
कहॉ अदृश्य हो गया वह आदमी
जो छूरे की धार पर चलता था
स्वय को पहचानने के लिए ?

अपनी ही दृष्टि मे बौने लगने वाले लोग
आज भी उच्छवास लेकर पूछते है—
कहॉ गये वे दान का अर्थ समझने वाले लोग
जो अपना तिलतिल दे देते थे,
हड्डियॉ तक दूसरो के लिए
और देने का अभिमान भी दे देते थे
दान के साथ।

स्वाधीनता जिनके हाथो मे
हथकडी बन गई है
और व्यक्तित्व पैरो की बेड़ी
वे निर्जीव संस्कारो के बन्दी
अब भी पूछते है—
कहॉ गये वे कद्दावर लोग
जो हाथ बढाकर स्वर्ग के
देवताओ को छू लेते थे
और उनके उद्यानो मे फूले हुए पारिजात
पूजा के लिए तोड़ लेते थे ?

संस्कृतिविहीन सभ्यता की
दमघोट हवा मे
जी रहे अधमरे लोग
अब भी पूछते है एक दूसरे से—
कहाँ गई वह परजाति
जो जानती थी भली-भाँति
कि प्राप्ति की प्रतीक्षा का पूर्ण अभाव ही
सच्ची उपलब्धि है,
सब कुछ हो जाने पर कुछ न होना ही
सर्वश्रेष्ठ सफलता है, सिद्धि है ?

झूठे बडप्पन के बोझ से दबे थके लोग
अब भी सोचते है
जो कभी दृश्य स एकाकार था
आज क्यो हो गया अदृश्य,
कैसा अन्तर्विरोध खडा हो गया हिमालय सा
दृश्य और अदृश्य के बीच
आखिर क्यो ऐसा हो गया ?

उत्तर उभरता है भीतर ही भीतर
मुखर होता है रहस्य जैसे
मरुभूमि मे खिल उठे हो फूल
प्रश्न की उर्वरता से,
जानने की उत्कण्ठा के जल से—
अदृश्य और दृश्य मे कोई दुश्मनी नही है
एक शक्ति है तो दूसरी अभिव्यक्ति
किन्तु जब शक्ति हो जाती है बन्दी
अभिव्यक्ति अधी हो जाती है,
शक्ति जब गुप्त हो जाती है

३

किसी कटघरे या तहखाने मे,
अभिव्यक्ति तब पंगु हो जाती है।
आवश्यक है ऐसे क्षणो मे
"प्रबोधं च गृहस्वामी" मंत्र का सस्वर
सतत् उच्चारण।
शक्ति को जगाकर अभिव्यक्ति से मिलाने के लिए
आवश्यक है दृश्य का परिवर्तन।
आवश्यक है हटाना तत्क्षण
अदृश्य पर पड़ा हुआ आवरण।

●

५

पहचान का प्रश्न

वह प्रश्न जो तुमने मेरी ओर
चाभी के गुच्छे सा फेका था
यह सोचकर कि इसी से खुलेगा
रहस्यो का पिटारा
अभी भी खूँटी पर टॅगा है
मेरी ही कमीज के पास।
कमीज जिस कपड़े का बना है
और उस कपडे से कमीज जिसने सिला है
उसका नाम जो पीछे टका है,
कमीज मे उभरते मेरे वस्त्राकार का
मेरे घर वालो को पूरा पता है,
कमीज की पहचान—मेरा नाम भी
लाल डोरे से अङ्कित है जिससे
कमीज को मै अपना समझता हूँ
किन्तु खूँटी पर टंगा प्रश्न
अब भी वही टंगा का टंगा है।

उसे कोई नही जानता
न मुझसे कोई पूछता है
कि आखिर वह क्या है
मात्र कागज का एक कोरा पन्ना,

या जिन्दगी का दस्तावेज,
अथवा मृत्यु का सन्देश ।
क्या उस पर "कोऽह", कुत आयात:"
का पुराना प्रश्न लिखा है,
या कोई टाइम बम है जिसका
पलीता मेरी कमीज से जुड़ा है ?

आखिर जब मैने डरते डरते
खूँटी पर टगी कागज की पोटली खोली
और सबको दिखा दिया
उस पर एक धुँधला सा वृत्त था बना हुआ
जैसे किसी अधेरी सुरग का मुँह था खुला हुआ ।
मेरे नन्हे से बेटे ने आतुर आश्चर्य से कहा—
पापा, इतना बडा शून्य किसने है बना दिया
और उसे तुम्हारी कमीज के पास क्यो टाँग दिया ?
मै निरुत्तर था किन्तु सोचता रहा—
प्रश्न ही क्या उत्तर था ?

●

६

अस्तित्व के आयाम

मुझे मेरे ही घर के चौखटे मे फिट मत करो
दरवाजो की तरह,
कभी उससे बडा
कभी बहुत छोटा हो जाता हूँ !
हाँ, बडा हो जाता हूँ जब कोई
मेरी ही कविता मे मुझसे छिपा हुआ
कोई अर्थ बता देता है
और बहुत छोटा हो जाता हूँ
एक ऐसे वामन की तरह
जो ब्रह्माण्ड क्या
अपनी चौखट भी नाप नही सकता
जब बेटी के विवाह का प्रस्ताव लेकर
उकडू बैठना पड़ता है किसी थानेदार बाप के समक्ष
एक नामजद मुजरिम की तरह

कभी इतना बडा हो जाता हूँ कि
चौखट मे घुस नही पाता हूँ यह सुनकर
कि कोई किसी अंधे की लाठी बना है,
मै फिर सिकुड़ कर छोटा हो जाता हूँ

पिचके हुए गुब्बारे की भाँति
अखबार मे यह समाचार पढकर
कि किसी सास ने बहू को जला दिया
पुत्र से सन्धि कर।

फिर बढकर हिमालय बन जाता हूँ
यह बात सुनकर
कि किसी ने सच्ची बात कही है
निर्भीक होकर
किन्तु दूसरे ही क्षण छोटा हो जाता हूँ
सिमट कर सरसो का दाना
जब कोई अपने दिये गये वचन का
गला घोट कर फेक देता है उसकी लाश
मेरे ही आँगन मे
और मुझे ही घोषित कर देता है हत्यारा।

यह छोटा बड़ा हो जाना
पवनपुत्र का पराक्रम बिल्कुल नहीहै,
अस्तित्व का नया आयाम है
जिसे मै जी सकता हूँ किन्तु कभी भी
चौखटी सुरसा के मुँह से
बाहर नही निकल सकता।

●

७

भीतर का सूर्य

बिजली जब चली जाती है अचानक
घर के सारे बल्बो की आखे है झप जाती,
घर रोने लगता है पुरुरवा की तरह
उर्वशी के अन्तर्धान होने पर
किन्तु बहुत अच्छा लगता है अँधेरे मे टटोलना
और घर की असली पहचान भी तभी होती है
जब हर खिड़की दरवाजा और पलंग या आलमारी
किधर है, कहाँ है दियासलाई और मोमबत्ती—
सब हो जाता है हस्तामलकवत ।
मै बेखटके दीवारो को प्यार से सहलाता हुआ
चला जाता हूँ शयनकक्ष से किचेन तक
किन्तु मोमबत्ती जलने से पहले
बच्चे दोहराते रहते है अपने पाठ की पंक्तियाँ,
'असतो मा सदगमय, तमसो मा ज्योतिगमय'
पत्नी भी गुनगुना उठती है 'मानस' की प्रिय चौपाई
'तन बिन परस नयन बिन देखा'—
आनन रहित सकल रस भोगी,
बिन बानी वक्ता बड योगी ।
मै समझ जाता हूँ कविता का रहस्य
और मुझे मिल जाता है नई रचना की शीर्षक—
"अन्धकार से प्रकाश की ओर"

और कविता की एक स्पष्ट पंक्ति तैरने लगती है
मेरी कल्पना की डालफिन पर सवार होकर
अंधकार के सागर मे।
बड़ा अनोखा होता है ऐसा क्षण
जब बाहर छा जाता है घुप्प अंधेरा
और एक सूरज उदित हो जाता है भीतर।

●

८

वापसी

पुनः मै अपने घर की दहलीज पर खड़ा था
जहाँ से साठ वर्ष पहले निकला था,
रात का पिछला पहर था।
दस्तक पर दस्तक दी मैने किन्तु
किसी ने दरवाजा नही खोला,
शायद दरवाजा ही नही था वहा
या सब सोये थे,
काल की परतो मे खोये थे।
वे कब सोये थे, कब तक सोयेगे,
मुझे कुछ भी नही ज्ञात था।
चारों ओर अधकार का सागर था
जिसमे यादो की नाव डूबी थी।
मुझे डुबकियाँ लगानी पडी
नाव को टटोलना पड़ा
जोर से चिल्लाना पड़ा
किन्तु दरवाजा नही खुला,
मै समय के बाहर ही खडा रहा।
शायद वहाँ कोई नही था,
न कोई दरवाजा ही था।

सब कुछ धुँआ धुँआ था,
जो दिखाई पडा माटी का ढूह था

बिखरी हुई ईंटे—टूटी खपरैले थी
किन्तु थोड़ी देर मे चॉद
नीम के पेड के कुछ ऊपर आया
और दिखाई पडा वह कमरा
जहाॅ माॅ मुझे दुलारती थी
और वह आँगन जहाॅ मै
ऊधम मचाता था
रामदाने के लड्डू और गुड़ की डली के साथ
मार खाता था।
चॉद और ऊपर चढा
किन्तु एक सैलानी बादल से ढॅक गया।
मैने फिर आवाज दी
किन्तु न कोई उठा, न दरवाजा ही खुला।
यादो की कोठरी मे बन्द
मुझे लगा वहाॅ कुछ न था
जहाॅ अभी अभी छोटे भाइयो
बहनो के साथ खेलता रहा था।
वहाॅ न कमरा था न आँगन
केवल एक खण्डहर था
जो कभी मेरा ही घर था।
शान्ति की चादर ओढे मै—
एक अबोले शब्द सा खड़ा था, बचपन
जो कद मे मुझसे बडा था,
किन्तु आज गूगा सा खडा था,
उसके सामने खडा था मृत्यु का
भयानक भेडिया
आक्रमक मुद्रा मे।

मै वहाॅ कुछ क्षण ही रुका था
किन्तु ऐसा लगा था

कि कुछ न कुछ हुआ है,
शायद भूचाल ही आया हो
जब मै वहाँ नहीं था
और समय के मलबे के नीचे
सारा सामान बर्तन भाडा, कुर्सी मेज
सब दबा पडा था।
दबे पडे थे मेरे माता पिता,
बाबा दादी और सारे स्वजन
जिन्होंने मेरी दस्तकें सुनी होगी अवश्य।
मुझे क्षण भर लगा था,
शायद मलबा ही घर है
या घर मलबे से बना है।
किन्तु दूसरे क्षण लगा था
कि दूर तक कोई नही है
कही कुछ भी नही हुआ है।
और नजदीक भी कुछ न था,
मै मरे हुए सालो के मलबे पर खडा था,
शायद जो भी घटा था
मेरे और समय के बीच ही हुआ था,
दूरी कुछ न थी, न फासला ही था
स्थान या समय का।
यादो का कुहासा था केवल,
एक उदास उल्लू बोला था
और एक पत्ता खरका था
चाँद बंसवारी के पीछे जा छिपा था,
अंधेरा अधेरे को था घूर रहा
फैली थी चारो ओर आकारहीन
एक ठोस शून्यता।

पौ फटने के पहले मै चल पड़ा,
बहुत दूर जाना था

और घर भी खोजना था
जो मेरे मन मे बसा था
जहाँ न कोई मरा था न सोया था।
पिता जहाँ जागते होगे
मेरी राह देखते हुए,
प्यार के लड्डू और गुड की डली लिए
माँ दरवाजे पर प्रतीक्षारत खडी होगी,
मुझे भूख भी लगी होगी।
वर्षो बाद आया था घर
वापस घर जाना था।

चलता रहा, चलता रहा
रास्ते भर सोचता रहा,
मै कहां से चला था,
कहां कहा ठहरा था,
और जहाँ हूँ जा रहा
क्या वही मेरा घर था
जहाँ से साठ वर्ष पूर्व निकला था,
शेष सिर्फ यादो का मलबा था ?

•

१

ठूँठ

पुरानी हवेली के खण्डहर से थोडी दूर
गॉव की परती के कोने पर
खडा है अकेला नितान्त
आम का ठूँठा वृक्ष
जिसके पास बची हैं केवल कुछ कोंपले
जिदगी का अन्तिम सबूत
और एक नगी डाल—
अस्तित्व का अधूरा बोध।
ठूँठ इतना बूढा है कि बीती हुई
जिंदगी के रूमानी अनुभवों को
ठीक से कर नही सकता याद—
वे सावन के गीत कजरी मल्हार
और एकान्तिप्रिय प्रेमियो का अछूता प्यार
जो उसकी मजरियो के साथ खिलता था
और वे अर्धनग्न गदराये शरीर जो
उसके बौराये फूलो के साथ हिलते थे
उल्लसित नृत्य-मुद्राओ मे
जब बहती थी मदमाती फागुनी बयार।
वे सपने जो घायल पायलो की
मधुर ध्वनि के साथ पलते थे
जब घुप्प अधेरे मे घूँघट खुलते थे।

धूमिल होती जा रही है उसकी स्मृति
उस अलौकिक सिहरन की,
जब उसके निकट परिरम्भकुम्भ की
मदिरा मधुर छलकती थी,
जब अलसित अंको मे अंग नही
आत्माएँ खिलती थी।
वे दिन जब वह अपनी डालियाँ झुकाकर
श्रद्धालु अगुलियो से छू लेता था बार-बार
अपनी ममतामयी माता का शरीर।
वे दिन जब उसके प्रेम मे पूर्णता थी
और पूर्णता मे प्यार।
सुख की समाधि, समाधि का सुख
सब उसका था,
जब उसकी छाँह विरक्त साधुओ का
रैन बसेरा था।

ठूँठ आज अपने भाग्य पर रोये क्यो
जब उसने पीढियो का भाग्य बदलते देखा है—
अगणित सयोग वियोग के क्षण
सबको भोगा है।
कितनी नवबधुओ की डोलियाँ वहाँ उतरी थी
सुनता रहता था वह उदास विदाई का
क्रन्दन विलाप।
बिछुडते बाप भाई की नये सम्बन्धी से
बेटी को शीघ्र भेजने की फरियाद।
और उसी के नीचे हुई थी कई बार
गाँव के जमीदारो मे जमकर मारपीट,
कितने सर फूटे थे
लाशे गिरी थी
उसका नया नामकरण हुआ था—
'मुड़फोडवा पेड़'।

एकमात्र साथी वह
पास मे पुराना कुआँ था
जो अब अधा है
सूखा पडा है।

अनगिनत अर्थियाँ उतारी गईं
दुखते हुए कंधो से उसी के नीचे
शव यात्रियो के विश्राम के लिए
या अन्तिम पिण्डदान के लिए।
कितने मरघटी उपदेश उसने सुने है,
अर्जित किया है
कितना श्मशान ज्ञान।

ठूँठ अब भी सोचता है हर साँझ
ऋतु बदलते ही यायावर पक्षियो का
झुण्ड आयेगा अवश्य—
मेरी अधसूखी एकाकी डाल पर उतरेगा
जी भर चहचहायेगा।
हाय, पत्तियाँ अधिक होती
तो मधुर स्वर भरती,
फूल होते तो झर-झर झरते
फिर भी मेरी बूढी हड्डियाँ हिलेंगी
और मेरे अर्धप्राण तने मे सिहरन होगी
थोड़ी देर! थोड़ी देर!
मुझे मेरी खोई अस्मिता मिलेगी
थोडी देर! थोड़ी देर!
परदेशी पक्षियो के गीतो के लय की थरथराहट
मेरी सकुचित रगो मे भरेगी झनझनाहट
थोड़ी देर! थोड़ी देर!

किन्तु कल साँझ घिरते ही
घनघोर घटाएँ भी घिर आई,
वर्षा हुई मूसलाधार।
मात्र एक भयभीत उल्लुओ का जोडा
उसके जीर्ण कोटर मे आकर छिपा
रात भर उसके साथ रोने के लिये।
उसे कहाँ ज्ञात था
पौ फटने के पहले
आज उसी पर बिजली गिरेगी,
उसकी अधसूखी डाल
टूट गिरेगी भूमि पर बेहाल।
आधी रातको बिजली जब कड़की थी
और उसका दु खी हृदय धडका था कई बार,
उल्लुओ का जोडा अचानक उडा था
अप्रत्याशित दुर्घटना की आहट से।

उसे कहाँ ज्ञात था
सूरज की प्रथम किरन खेतो मे उतरते ही
उसकी बची खुची कोपलो को बकरियाँ चरेगी
और उसका कटा हुआ हाथ हाहाकार करेगा
जब उस पर सहस्रो दाँत वाला
दैत्याकार आरा चलेगा।
अस्तित्व का अन्तिम चिन्ह—
उसकी आखिरी डाल
टुकडे-टुकडे हो जायगी
दिन चढने के पहले
जब सारा आकाश करेगा
उसी के रक्त मे प्रातः स्नान।
उभरेगे लाल लाल धब्बे
पथरीले टीलो पर।
उसे कहाँ ज्ञात था

न उसने कभी सोचा था
कि कल वह अपनी ही
परछाईं देखकर डरेगा
और उधर से गुजरते हुए रात के राही
उसे देखकर चिल्लायेंगे
भूत रे भूत।

•

४

१०

आत्म-कथा

कहानी हूँ लिख रहा अपनी ही किन्तु
कथानक कहीं और है गढा गया।
कठपुतली है थिरक रही घूम-घूम
दर्शक रहे हैं झूम।
कहानी बढ रही है आगे
कथानक गढते हुए या कोई
पहले ही लिखे गये कथानक की पाण्डुलिपि
खोल रहा है पन्ना दर पन्ना,
शायद कथानक ही कहानी की नियति है
और कहानी कथानक का दायरा है ढूँढ़ रही
कठपुतली है घूम रही।

थिरक-थिरक कर झूम-झूम कर
कठपुतली है घूम रही
उपर नीचे दाये बाये
किन्तु उतनी ही दूर या देर तक
जितनी अदृश्य डोर देती है ढील।
कभी कभी लगता है कहानी
लिखने लगी है दूसरी कहानी
मेरे हाथ से छीन कर कलम

और कठपुतली की डोर है टूट गई
किन्तु कहानी क्या वही तक बढती है
जहाँ तक 'प्लॉट' की है परिधि ।
हर क्षण लगता है जो कुछ अदृश्य था
वही है दृश्यमान हो रहा ।
शायद किसी का दर्द केवल
किसी की कल्पना है
या किसी का अदृश्य सत्य
किसी का सपना है
और मै सत्य और सपने के
बीच मे खड़ा हूँ
कथानक ढूँढता हुआ
जो शायद पहले ही है गढ़ा हुआ ।

मेरी सूझ बूझ सब
क्या पागलपन है
या कथानक ढूँढने का पागलपन ही
सयानापन है
या कहानी का करिश्मा एक विरोधाभास है
और विरोधाभास का आभास ही
कथानक है कहानी का ?
क्या जो अनचाहे घटा वही घटना था ?
जो कुछ लिखा गया मात्र वही लिखना था
जो मिले उन्ही से मिलना था ?
किसी ने घृणा की, कोई उदासीन था
किसी ने प्यार से झकझोर दिया
जो कुछ मिला क्या उतना ही मिलना था
मैने जो कुछ चुना उसका भी अर्थ था ?
विसंगति है या विडम्बना—
कहानी मेरी है किन्तु
कथानक का स्रोत कही और है,

कला मेरी है किन्तु
कलाकार कोई और है ?

कहानी मेरी है या
मै था कहानी बन गया ?
कहानी का रूप था बदला हुआ,
सच क्या है कैसे कहूँ
शायद कह भी नही सकता
कहानी जब तक हूँ लिख रहा
कहानी और कथानक के बीच मे पडा हुआ।
यही क्या कम हुआ—
कहानी के हर मोड पर
मै कुछ कटता गया।
मै जो कली की भाँति बन्द था
पूरा का पूरा खुल गया,
साधारण असाधारण हो गया।
पीडा मेरी थी, दु:ख दर्द मेरा था
स्वयं सब भोगा हुआ
किन्तु अब मै नही था वहाँ
केवल कथानक था, दर्द था।
फिर भी कहानी जिसने भी पढी सुनी
वह रस मे विभोर था,
दर्द के दर्द मे निहाल
मेरे ही नही
अपने ही दर्द मे डूबा पोर पोर था

●

११

नरसिंह

मेरे बारे मे तुम्हारा विचार
कि मै आधा नर हूँगा और आधा सिंह
कोरी कल्पना नही है निराधार,
किन्तु तुमने यह कभी न सोचा होगा
कि मेरा सिंह जीवन भर लगातार
अपने धारदार पंजो से नोचता रहा है
मेरा अधमरा आदमी,
खोजता रहा है मेरी कोशिकाओ मे,
शिराओ मे, रक्त कणिकाओं मे
छिपी हुई मेरी आत्मा।

सिंह मेरी हर चीत्कार पर
पूछता रहा है यक्ष की भाँति
प्रश्न पर प्रश्न।
पहला प्रश्न तो यही था—
सिंह सत्य है या आदमी ?
प्रश्न आज तक अनुत्तरित
कानो के भीतरी तहखानो मे गूँजता रहा।
पीड़ा मे प्रश्न का उत्तर कौन दे,
वह जो पीड़ा का भागी है या वह

जो पीड़ा से है असम्पृक्त ?
दूसरी बार सिह ही ने पूछा था—
सिह बडा है या आदमी ?
मै आज तक निरुत्तर रहा
और सिह खोज रहा है मेरी आत्मा निरन्तर
मेरी शिराओ, कोशिकाओ मे,
रक्त कणिकाओ मे ।

पीडा की तीव्रता मे आखिर
मैने एक बार धीरे से कहा था—
आदमी न हो तो आत्मा का क्या प्रमाण
और आत्मा न हो तो आदमी का क्या अस्तित्व
किन्तु सिह सन्तुष्ट न हुआ
क्योकि मेरा अधूरा उत्तर
अन्योन्याश्रित तथ्यो का सत्य था ।
सिह तो प्रत्यक्ष देखना चाहता था
देह से असम्पृक्त मेरी नगी आत्मा ।
सिंह धमकी दे रहा है मुझे बार बार—
तुम्हारे चारो भाई मरे पड़े है धरती पर
तुम अकेले बचे हो चारो के अहंकार,
जीवित रहना है तो
मेरे प्रश्नो का उत्तर देना होगा
मुझे भूख लगी है बोलो
तुम्हारी आत्मा कहॉ है !

नर है नाच रहा नए नए नाच
तने हुए तार पर निरन्तर
सिंह घूमता रहता है तार के नीचे
दाये बायें इधर उधर ।

काल के ताल पर थिरकना अविराम
नीचे गिरने की आशंका और
सिह के पंजो से नीचे जाने का भय,
साथ साथ ताल नही टूटना है
बन्द नही होना है घुँघरुओ का छन्द,
होनी नही है भंग मुद्राएँ
रुकना नही है अंगो का स्पन्दन
और सिंह के प्रश्नो का उत्तर भी देना है
जो शायद
इसी नृत्य मे निहित है
लयबद्ध-तालबद्ध
किन्तु भय से विभाजित विखण्डित मै,
मेरा नृत्य भी तो खण्डित होगा—वह
कैसे सिंह की जिज्ञासा का होगा समाधान ?
सिह शायद भूखा ही रहेगा
जब तक मेरा नृत्य चलता रहेगा।

चुम्बकीय रूप का आकर्षण
सोने की ईटो की चकाचौध चमक
मन मे कुर्सी की पकड़,
थिरकते पग प्रायः हो जाते हैं डगमग
लय टूट जाती है बार बार ताल क्षीण
मुद्राएँ हो जाती है भंग
लगता है अब गिरे तब गिरे
खम्भे मे छिपे हुए सिंह के पंजों पर
जो मेरी मासपेशियो को नोचनोच देखेगा
मेरा अदृश्य आत्मा कहां है—
शिराओ मे कोशिकाओ मे
या उसके भीतर और भीतर
और भीतर।

भीतर—
कभी कभी लगता है
तने हुए तार पर नाचते नाचते,
तार और नृत्य सब भीतर है
बाहर तो सपाट है समुद्र सा
केवल लहरे लहरे और लहरे
जो तोड़ती रहती है सपाट की निर्जीवता
और टकराती रहती है इन खम्भो से
जिन पर तार यह तना है
और जिनमे सिह कही छिपा है।
मै अधूरा हूँ, अधूरा रहूँगा
न नर हूँ न सिह, शायद
दोनो को जोड़ने वाली कडी हूँ या
नृत्य की मुद्राओ से बँधा हुआ नर्तक।
न मेरे सिह के पास है समाधान
न नर पा सकता है उत्तर।
किसी निर्मम ने कर दिया है संयुक्त
नाचता हुआ नर और भूखा सिह
मेरे ही भीतर।

●

१२

मेरी त्वचा

कहो तो उतार दूँ अपनी त्वचा
अभी अभी पहनी हुई कमीज की तरह
और तुम साफ साफ देख लो मेरे भीतर
भूखी आंतें, अतृप्त इच्छाओ का ज्वालामुखी,
नसो मे बहती हुई नदी वासना की।
दूसरी त्वचाओं ने मुझे बार-बार छला ठगा
किन्तु इसने मेरी पीडा दु:ख दर्द वेदना
सब सहा, सदा ही छिपाया ढँका
इसीलिए फैशन बदलने पर भी
मै इसे कभी न बदलता हूँ न उतारता
पहनी हुई कमीज की तरह।

जब भी जो कुछ भी मुझे मिला
सर्वप्रथम इसी ने छुआ, ग्रहण किया
किन्तु तत्क्षण किसी दूसरे को दे दिया,
मन मे बुद्धि मे रस ही रस भर दिया।
भीतर जब भी कोई सूरज उदित हुआ
उषा की लाली सी निखर उठी मेरी त्वचा,
घटाटोप अंधेरा घिरने पर, तूफान आने पर
अनासक्त, निस्पृह, अनछुई बनी रही

इसीलिए मौसम बदलने पर भी
मै इसे कभी न बदलता हूँ न उतारता
पहनी हुई कमीज की तरह ।

मेरी त्वचा ने थपेड़े ही थपेड़े सहे किन्तु
मोटी न हुई कभी यह सवेदनशीला,
हड्डियाॅ उदासीन रही जब कापी मासपेशियाँ,
भीतर कुछ न कुछ बार-बार गला पिघला
कानो मे समुद्र सा उमडा कई बार
आॅखो मे आइने टूटते रहे बार-बार,
वर्षो मैने समुद्र मथा अमृत अभी तक
नही मिला, सारा विष त्वचा ने ही पिया।
इसीलिए जीवन मे पतझर जब जब आता है
मुरझाए पत्तो सा इसे नही हूँ गिराता, न उतारता
पहनी हुई कमीज की तरह ।

देखता हूँ चारो ओर, वे अधिक समझदार है
जो क्षण प्रतिक्षण बदलते है रग
अपनी त्वचा का गिरगिट की तरह
या विषैले सर्पो की भाॅति मौसम बे मौसम
उतारा करते है केंचुली पर केंचुली,
पसीने पसीने हो जाती है मेरी आत्मा सोचकर
अब उदासीन हड्डियो का क्या होगा ?
क्या होगा रोगग्रस्त आॅतो, हृदय, फेफड़ो का ?
मारेगा कौन गंगा कालिन्दी मे छिपे विषधर
जब रग बदलते रहेगे लोग गिरगिट सा
या मौसम बेमौसम उतार देंगे अपनी त्वचा
केंचुली या पहनी हुई कमीज की तरह ।

१३

गुलाब से

रंग रूप मस्ती सब कुछ है मेरे पास,
मनमोहक गुलाब,
मेरी सुगन्ध भी तुमसे कुछ कम नही।
समझते तुम यदि मुझसे प्यार करते,
यदि पढ सकते मेरी कविताएँ
भविष्य कोई शब्द नही
तुम्हारे शब्दकोश मे,
और मै केवल वर्तमान मे जी नही सकता।
अतीत एक काला नाग बनकर
आ जाता है रोज मेरी राह मे,
और भविष्य
डँसता रहता है प्रतिक्षण

केवल कर्म मेरा अधिकार है,
तुम्हे मिला है एक क्षणजीवी निष्काम धर्म,
एक शाश्वत स्वभाव
जिसे तुम केवल धारण करते हो
किन्तु पराग कणो से
किसी की अस्मिता नही बनती,
कम से कम मेरी।
मै जूझता रहता हूँ क्षणो से

सिसिफस की तरह लुढकाता रहता हूँ चट्टान
पर्वत के उस पार जाने के लिए
किन्तु हर बार इसी ओर लुढक जाता है पत्थर ।

शायद मै एक सिलसिला हूँ
और तुम एक स्थिति ।
मै केवल चट्टान ढोता हूँ जीने के लिए
और तुम जीते हुए महकते हो निरन्तर,
तुम्हारे काँटे भी रक्षक है किन्तु
मेरी तो पखुड़ियाँ भी
चुभती रहती है प्रतिक्षण ।

•

१४

स्वप्न भंग

सडकें
चलते चलते है खो गई
किसी घने जगल मे
या डूब गई है
कोहरे के गहरे सागर मे।
अंधेरे मे चलना सम्भव है
प्रकाश की ओर,
कोई बुजुर्ग नही जानता
न कोई युवा ही
जानना है चाहता।
हवाएँ क्यो चुप हैं,
सच्चाई क्या है ?
कोई जन्मा है या कोई मरा है
या किसी झूठ का
भण्डाफोड हुआ है अथवा
किसी आशा का गर्भपात हुआ है ?
सच बोलना शायद
गुनाह है इस गाँव मे।
आगे का रास्ता किधर है
कोई नहीं जानता।
धुँधली लालटेने जलाये
खोज रहे है सब महज
घर लौटने का रास्ता।

भूत वास्तव मे
भूत है भयकर—
सपनो मे बेधडक आ जाता है
जागने पर प्रत्यक्ष डराता है,
धमकाता है,
बीसो नाखून गडाता है
मस्तिष्क की गूदी मे
जख्मी शिराओ मे।
भविष्य एक बीमार बच्चा
सो रहा है, मरणासन्न
वर्तमान की बाहो मे।

आपा धापी, शोरशराबा,
भाग दौड बहुत है
बहुत कुछ है हो रहा
किन्तु वास्तव मे कुछ नही
अकेले इन्सान के लिये,
सही इन्सान के लिये,
क्रान्तिकारी शैतान के लिये,
न ही मगलमय समदर्शी
भगवान के लिये।

१५

दीवार

वही कुछ भी तो नही
जो तुम्हे जकडे है
डरो नही
दीवार की परछाईं है जो
तुम्हारे साथ साथ चलती है
तुम समझते हो
तुम्हे पकडे है ।
मृत्यु का भय या
मोह जीवन का
जिजीविषा
कुछ भी कहो—
यह तुम्हारा भ्रम है
कि यह तुम्हे पकड़े है ।

पास मे कुँआ है
झाँक कर देखो,
तुम इसे पकडे हो या
यह तुम्हे जकडे है ।
यह समझ कर या घबडा कर
कि यह तुम्हे पकड़े है

कूद मत पडना
कुएँ मे चिल्लाते हुए
बचाओ, बचाओ
दीवार मुझे पकडे है
जकडे है।

दीवारो के कान तो हो सकते है
किन्तु हाथ और अँगुलियाँ
मैने सुना भी नही
तुमने देखा होगा।
दीवार तो बस
बहुत बडा रोडा है
रोशनी की राहो मे।
यह तुम्हारा भ्रम है
कि रोशनी नही है उधर,
चढसको दीवार पर
तो चढकर देखो,
जहाँ डूबा था सूरज
वही निकला है।
महज ढका था वह
दीवार से
जिसकी छाया तुम्हे पकडे है
युगो से
जकड़े है।

•

१६

जब भी देखता हूँ ध्यान से

जब भी देखता हूँ ध्यान से
फूल की वह मौन कली
जो लगती है
अब खिली तब खिली
या मन्दिर को जाने वाली गली
जहाँ बिकते है फूलो के गजरे
भगवान पर चढने को उत्सुक
खिले खिले, जब भी देखता हूँ
मन्दिर के पीछे पोखरे मे
मछुए की बसी पानी मे हिली मिली
प्रतीक्षा मे मछली की—
अब मिली अब मिली,
मन का बोझ कुछ कम है हो जाता,
क्षण भर को ही सही।

यह कह सकना कठिन है कि
साधना बडी है या सिद्धि,
इसे तो मुझसे अधिक वह जानता है
जो मन्दिर के द्वार पर बेच रहा है मूँगफली
किन्तु जब भी देखता हूँ अपने से बाहर
किसी भी चीज़ को ध्यान से

मेरा पाप कुछ कट जाता है,
क्षण भर को ही सही

जब भी देखता हूँ ध्यान से
आकाश मे उडती हंसो की जोडी
जो प्रेम के नशे मे लगती है
अब गिरी अब गिरी
फिर ऊपर उडी।
या जब भी देखता हूँ ध्यान से
दूर हिमालय की चोटियाँ धवल
दूध मे नहाई हुई
मेरे भीतर के कुछ दाग है धुल जाते,
क्षण भर को ही सही।

●

१७

एक सूर्योदय

कैसा था सूर्योदय वह
जब सूरज से हो गया था वह एकाकार,
उठ खडा हुआ था तत्काल
जब सोने की अँगुलियाँ
क्षितिज के छज्जे पर अडी थी
और सूरज दीवाल पकडे लटका था
उस पार
सर उठाते ही सूरज ने उसे देखा था
दोनो थे मुस्करा उठे,
मित्रो ने रग दिया एक दूसरे के गाल
तत्क्षण मल कर लाल गुलाल ।

पुरातन मित्र को पहचानता था किन्तु
वह जानता था भली भाँति
सूरज की तरह विशाल
तेजस्वी चमकदार वह
कभी नही हो सकता उतना लाल
उसने यह कभी सोचा भी न था ।
उभरते हुए सूर्य को नमस्कार किया था
क्योकि उसका मित्र
शत्रु था अन्धकार का ।

उसने जो भी देखा था भीतर
वही बाहर था उभर रहा
चमचमाता लाल लाल,
अंधकार का महाकाल
ज्योति का बमगोला विशाल
जो तमसाछन्न देश मे
दग उठा था अकस्मात।
इससे भी अधिक महत्वपूर्ण यह था
कि ज्योति का विस्फोट होते ही
वह एक क्षण
सूरज हो गया था
बेमिसाल।

•

१८

असाढ़ का पहला दिन

यह हवा की चुप्पी नही
हडताल है,
एक भी पत्ता नही डोलेगा रात भर ।
आकाश के अफसरो का
बादलो ने कर लिया है घेराव,
रात कभी इतनी काली हुई थी
किसी को याद नही,
सूखे गड्ढो पोखरो
ताल तलइयो मे
मेढक लगा रहे है नारे—
इन्कलाब जिन्दाबाद
इन्कलाब ज़िन्दाबाद ।
बूँदा बूँदी तो कल हुई थी कुछ
परसो भी
किन्तु आज असाढ का पहला दिन है,
परिवर्तन की तूफानी आंधी चलेगी
क्रान्ति होगी मूसलाधार ।
सूरज तभी मुँह दिखायेगा धरती को
जब भर जायेंगे सारे गड्ढे—
धरती के घाव ।

●

१९

रॉंग नम्बर

क्यो बज रहा है दूरभाष बार-बार ?
रिसीवर जब-जब उठाता हूँ
लगता है मै पुर्रवा हूँ या दुष्यन्त
किन्तु कोई नही बोलता है उस पार,
केवल गूँजती है—
किर्र किर्र किर्र ऽ ऽ ऽ—
एक अमानुषी आवाज
जैसे कोई दुहरा रहा है एक ही शब्द
प्रतिक्षण
मर मर मर मर ।

क्या मृत्यु ही एक शब्द है
बचा जीवन के कोष मे ?
घण्टी भीतर बज रही है या बाहर,
फोन मैने किया था
या किसी और ने ?
शंका समाधान के लिए
जब भी घुमाता हूँ डायल,
किसी जिन्दादिल से मिलाता हूँ तार,
हर बार मिलता है एक ही उत्तर—
क्षमा करे, "रॉग नम्बर" ।

●

२०

परछाईं

(१)

तुम्हारी ही ओर बढी
आ रही है दबे पाँव
वह भयानक परछाईं,
भागने से मिलेगा नही
कही कोई ठाँव ।
जहाँ भी छिपोगे
परछाईं के अदृश्य पजे
पहुँच जायेंगे कबन्ध के हाथों की भाँति
ठीक तुम्हारी ग्रीवा पर
और तुम्हारे लाख हाय तोबा करने,
चीखने चिल्लाने के बावजूद
मरोड़ देंगे
तुम्हारी गरदन,
तुम सिसकते ही रहोगे
अपने नरम बिस्तर पर,
जीवन-मृत
एक पराजित नायक को भाति ।
मृत्यु तो निश्चित है
क्योकि तुम डरे हो, थके हो
जहाँ से चले थे

वही पर वर्षो से रुके हो
और पीछा करती हुई
परछाईं के नाखून है विषैले

(२)

भीतर की सारी कालिमा, कमजोरी
बाहर जब उभरती है धुँआ बनकर
परछाईं लेती है तब ठोस आकार
दैत्याकार
और उसके नाखून नोच लेते है
आदमी का हृदय, फेफडा, आँतें
निकाल लेते है आँखे
फाड देते है मस्तिष्क की चेतन शिराएँ
कोमल कोशिकाएँ,
तडप तडप कर दम तोड देती है
भावनाएँ, मर जाते है विचार
इन्सानियत के प्राण पखेरू
उड़ जाते है रातो रात।
धुँआ भरे आगन मे
नाचते है नर पिशाच
स्वार्थ की डफली पर थाप देकर
अधी अहंता के लय पर,
सप्तस्वर ताल पर।

(३)

परछाईं उभरती है
जब विष्णु होते है निद्राग्रस्त,
परछाईं दौडती है मधुकैटभ बनकर
निगलने ध्यानमग्न सृष्टिकर्ता को
तुम्हारे ही भीतर।
सृजन यदि आवश्यक है तो तुम भी लड़ो,
विष्णु जैसे लडे थे सहस्रों वर्ष,
राम भी लडे थे बीसो वर्ष,
कृष्ण तो जीवन भर जूझते रहे।

बुद्ध के समक्ष आई थी कई बार
मरा बन कर।
क्राइस्ट ने इसे दी थी मात
सलीब पर चढ़कर।
ढोना होगा तुम्हे भी सलीब अपना
आजीवन अपने ही कन्धे पर।
लडो, शीघ्रता करो।
अभी तो ओठो के नीचे दबी है
उसकी मुस्कान,
अभी कहा देखा है तुमने
उसके भयानक दात-देखना
जब ठठाकर हँसेगी राक्षस
कालरात्रि से भी अधिक काली
यह परछाईं।
अभी तो केवल कालिमा फैलाई है
तुम्हारे देश परिवेश मे,
तुम्हारे चारो ओर जिससे
तुम कभी देख न सको
चीजो को, तथ्यो को सही परिप्रेक्ष्य मे
अभी तो बढाया है खूनी हाथ
तुम्हारी ओर
जिससे तुम डरे रहो, अपने
मखमली बिस्तर पर औंधे पडे रहो।

(४)

यह दृश्य जो देखते हो
परछाईं से परछाईंयो का निकलना
रक्त कणों से रक्तबीज बनना —
सब परछाईं का करिश्मा है
जो घने कुहरे सा छाया है
घर मे, आंगन मे, मन मे
और इस घुप्प अधेरे में
तथ्य को सत्य है माना जा रहा

सत्य को रद्दी की टोकरी मे फेंककर
तथ्यो की हो रही है पूजा,
बज रहे है अहंकारी घण्टे घडियाल,
स्वार्थो के शख।
परछाइँ की हो रही है आरती,
मानी जा रही है मनौतियाँ,
माँगे जा रहे है वरदान
आत्म-केन्द्रित सुखो के
आत्मघाती सुविधाओ के।
भीतर यह परछाइँ होगई है ठोस
कैंसर का गोला
जिससे ढक गया है अन्तरयामी ईश्वर,
बेचारा कराहता रहता है अहर्निश
जहरीले लोथड़े के बोझ से
दबा हुआ।

(५)

यह परछाइँ सोने की थैली है
या मिट्टी की छत
जो प्रत्येक के सिर पर
तलवार सी लटकी है ?
हम उसे अंगूर का पका गुच्छा समझकर
एक दूसरे से गुथे है युद्धम युद्ध।
कोई कहता है मीठे है,
कोई कहता है 'खट्टे'
परछाइँ मडराती रहती है निरन्तर सिर पर।
जब भी टकराती है मुझसे—
पूछता हूँ तू क्यो छलती रहती है
क्यो बदलती रहती है कलेवर
क्षण प्रतिक्षण—
कभी सामन्तवाद

कभी साम्राज्यवाद
कभी समाजवाद
कभी आतकवाद
और कभी प्रजातत्र का चोगा पहनकर
जातिवाद, वर्गवाद, अवसरवाद।
मेरा दम घुटता है तेर धुँए मे,
तू मंडराती रहती है सिर पर
तेरे आतक से अधिक भयानक है
तेरा आतंकवाद।

(६)

हिमालय की गुफाओ मे बैठे
आत्मज्ञानी, ध्यान मग्न
महासिद्धो को ज्ञात नही—
न आभास है रूमानी सैलानियों को
उनके ही गॉव की धरती पर
मर गये छटपटाकर ईश्वर।
भगवान स्वेछा से मरे
अथवा मार दिये गये
अंधेरे मे छिपकर,
यह मुकदमा दायर है
उच्चतम न्यायालय मे।
हत्यारो को पुलिस है खोज रही
गलियो के नुक्कडो पर
शहर की सडकों पर।
जिधर भी मुड़ता हूँ
प्रश्नचिन्ह सी खडी हो जाती है सामने
परछाईं रास्ता रोककर,
कहती है जोर देकर—
तुम्हे भी कहना है
ईश्वर ने आत्महत्या की,
तुम्हे भी गवाही देनी है

बन्दूक की नोकपर
सकल्पधर्मा हूँ
किन्तु टुकडो मे बटा हूँ
परछाईं की धार से कटा हूँ,
क्या करूँ ?
परछाईं से लडूँ
या सन्धि करूँ।
कोई नही बताता
ईश्वर को कैसे ज़िन्दा करूँ।

•

२१

मैली चादर

स्वयं को फैला दिया है मैने
एक मैली चादर सा
सडक के आर पार
जिसपर लोग बेखटकके चले,
देखे धुँधले धब्बे
अधभरे घाव
सफेदी मे छिपे हुए।
पूँछे वह कौन है
जो फैल गया है
धुली हुई चादर सा
सडक के आर पार?
और अपने पैरो की धूल से धो दें
धागो मे छिपे हुए
मेरे पुरातन घाव।

मैने बुनकर से कई बार कहा,
अनुनय विनय किया—
मै चादर नही रहना चाहता,
न ही नई चादर बनना हूँ चाहता,

मुझे बुनना बन्द करो दोस्त।
उसने कहा -
जब तक तुम्हारा ताना है बाना है,
धागे उलझे है
मै बुनूँगा ही।
चादर जब तक करघे पर है
घिर्री चलेगी ही
धागे टूटेगे ही
घाव बनेगे ही।
चादर मैली होगी ही
चाहे घर मे हो बिछी हुई
या सडक पर खुली हुई

●

२२
चिन्तन पर्व

मुझे सोचने दो
अभी और सोचने दो
मनाने दो चिन्तन पर्व ।
सोचने लगा था मै उसी क्षण
जब किसी की अदृश्य अंगुलियो ने
छू दिया था मुझे पहली बार,
वीणा बज उठी थी
भीतर आँगन मे,
खिल उठे थे असंख्य गुलाब ।
वीणा फिर बोलती है
खोलती है रहस्य की परतें—
आदमी चाहता है
संघर्ष और शान्ति साथ-साथ
किन्तु संघर्ष हो जाता है हावी
शान्ति पर बार-बार
विचार हो जाते है पंगु,
देखने, छूने, सूँघने की शक्ति एवं
सुगन्ध सब का हो जाता है क्षय ।
मुझे सोचने दो
मनाने दो चिन्तन पर्व—
शान्ति क्या बन सकती है संघर्ष
और संघर्ष कभी हो सकेगा शान्ति ?
विचार कैसे बनेंगे भाव
मुझे देखने दो,
अभी और सोचने दो ।
किन्तु वीणा क्यो नही बजती
वीणा की भांति ?
कौन ढीला है,
व्यक्ति या तार
या तार पर तने हुए

असंख्य व्यक्तियो का समूह
या समूह का व्यक्ति से सामंजस्य ?
क्यो नही गूँजती है
विगत रागो की प्रतिध्वनि
वर्तमान मे,
क्यो नही छूती कानो की भीतरी परते
आगत स्वर सन्धियो की गूँज,
स्वर क्यो नही बन पाते है शब्द
और शब्दो से क्यो नही निकलती
अर्थो की सुगन्ध ?
नाव क्यो डूब गई कल
अतल गहराइयो मे ?
मुझे सोचने दो
मनाने दो चिन्तन पर्व !
शायद वीणा बोलती है,
गूँजते है स्फुट स्वर
हाँ, वीणा बोलती है
खोलती है बन्धन—
जब तक हर व्यक्ति तना नही होगा
तार के साथ
जब तक हर व्यक्ति बँधा नही होगा
प्यार से एक दूसरे के साथ
नाव डूबी रहेगी
अतल गहराइयो मे।
कोई नही बजेगा
न वीणा न व्यक्ति
न तार से जुडे हुए व्यक्तियो का समूह
जब तक अदृश्य अगुलियाँ छुएँगी नही
भीतरी आँगन मे उलझे हुए तार
वीणा रहेगी असाध्य।
मै सोचता रहूँगा
अभी और सोचने दो
खँजड़ी को बोलने दो !